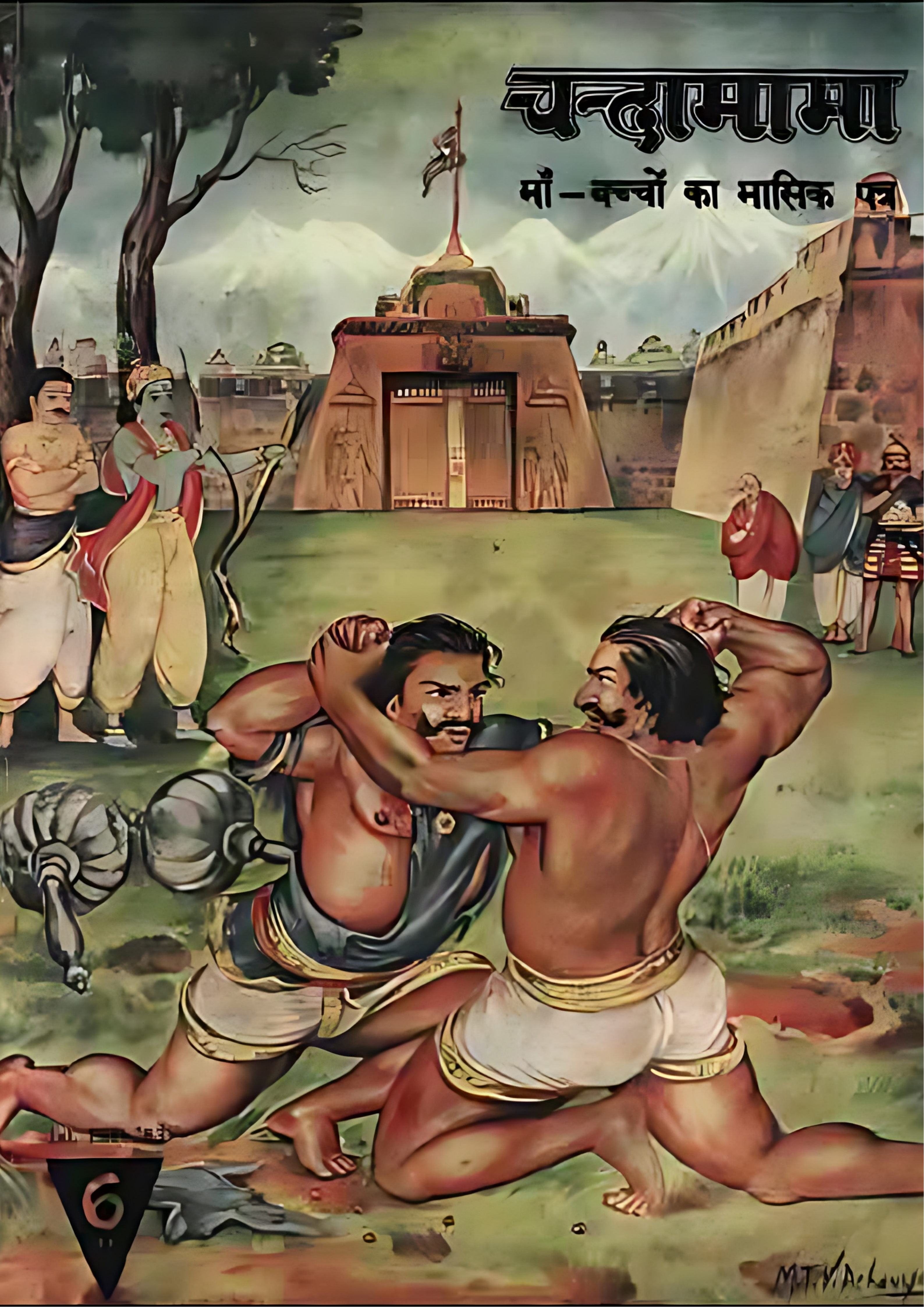
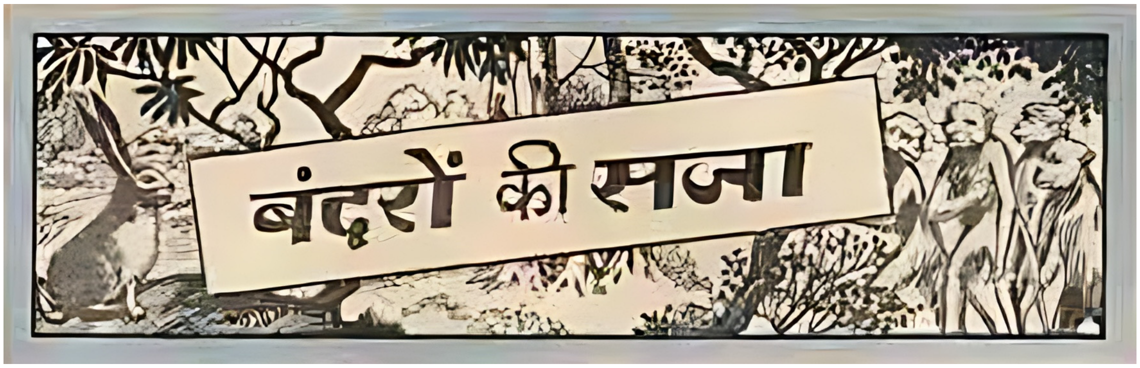
चन्दामामा

माँ-बच्चों का मासिक पत्र





एक जङ्गल था जिस में तरह तरह के जानवर रहते थे। वे सभी बड़े प्रेम से आपस में हिल-मिल कर रहते थे। एक दूसरे के प्रति किसी तरह का भेद-भाव न रखते थे।

एक बार गरमी के दिनों में जब सारा संसार धूप के मारे बेहाल था, एक खरगोश अपनी झाड़ी से बाहर आया। अपने अगले पञ्जे से एक बार मुँह पोंछ कर सूखे होठों पर जीभ फेर कर, जब उसने चारों ओर निगाह दौड़ाई तो चार बन्दर, जो गरमी से बहुत परेशान मालूम होते थे, दिखाई दिए।

खरगोश और बन्दरों में राम-राम हो गया। कुशल पूछने के बाद सभी एक पेड़ की छाँह में बैठ गए और बड़ी देर तक गप-शप होती रही।

अन्त में जाते वक़्त बन्दरों ने खरगोश से कहा-"भाई खरगोश ! हमारे यहाँ हाँडी भर बढ़िया शहद पड़ा हुआ है। हमारे साथ क्यों नहीं आ जाते। मधु का सेवन कर लोगे तो गरमी की परेशानी दूर हो जाएगी। तुम भी आओ न हमारे साथ !" उन्होंने बड़े प्रेम से उसे बुलाया।

खरगोश ने बन्दरों की बातों पर विश्वास कर लिया। वह उनके साथ चला गया। वे सब चलते-चलते एक बहुत पुराने शमी के पेड़ के पास जा पहुँचे।

इसी पेड़ पर वे बन्दर रहा करते थे। उसकी डालें तो क्या, छोटी छोटी टहनी तक उनकी जानी-पहचानी थी। पेड़ के नीचे पहुँचते ही बन्दर उछल कर ऊपर जा चढ़े। वहाँ दो डालों के बीच शहद से भरी हाँडी रखी हुई थी। चारों बन्दर आराम से बैठ गए और हाँडी से शहद निकाल कर मजे से खाने लगे।

यह देख कर खरगोश के मुँह से लार टपकने लगीं। गरमी की वजह से उसका



मुँह सूख गया था। शहद की मिठास का अनुमान करके वह बहुत अधीर होने लगा। वह बेचारा आस लगाए बैठा रहा कि बन्दर नीचे उतरेंगे और उसे भी थोड़ा शहद यखने को देंगे। लेकिन बड़ी देर तक बैठे रहने पर भी उसकी आशा पूरी नहीं हुई।

आखिर एक बन्दर ने उस से कहा- "अरे खरगोश भैया! खड़े खड़े क्या देखते हो ! आ जाओ न पेड़ पर तुम भी ! वाह भैया ! वाह ! यह शहद क्या है, अमृत है अमृत ! इसे तो देवताओं का अमृत ही समझ लो!" यों वह जीभ चटका कर उसे और भी ललचाने लगा।

अब बेचारे खरगोश की समझ में आ गया कि बन्दर उसका मखौल उड़ा रहे हैं। उसने मन में सोचा-"अच्छा भैया ! ऐसी बेईमानी ! इसकी कसर न निकाल ली तो मेरा नाम खरगोश नहीं!" यह सोच कर वह यहाँ से चला गया।

बस, उस दिन से खरगोश बन्दरों से बदला लेने की फिराक में लग गया। वह हाथ धोकर उनके पीछे पड़ गया। उसने सोचा-"इन्हें ऐसी सजा देनी चाहिए, जो बहुत दिन तक याद रहे।" कुछ दिन तक छुपे छुपे पीछा करके उसने उनके बारे में सारी बातें जान ली। उसे पता लग गया कि वे कहाँ कहाँ और किस-किस रास्ते से आते-जाते हैं। उस रास्ते की बगल में एक झाड़ी में उसने अपना अड्डा जमाया।

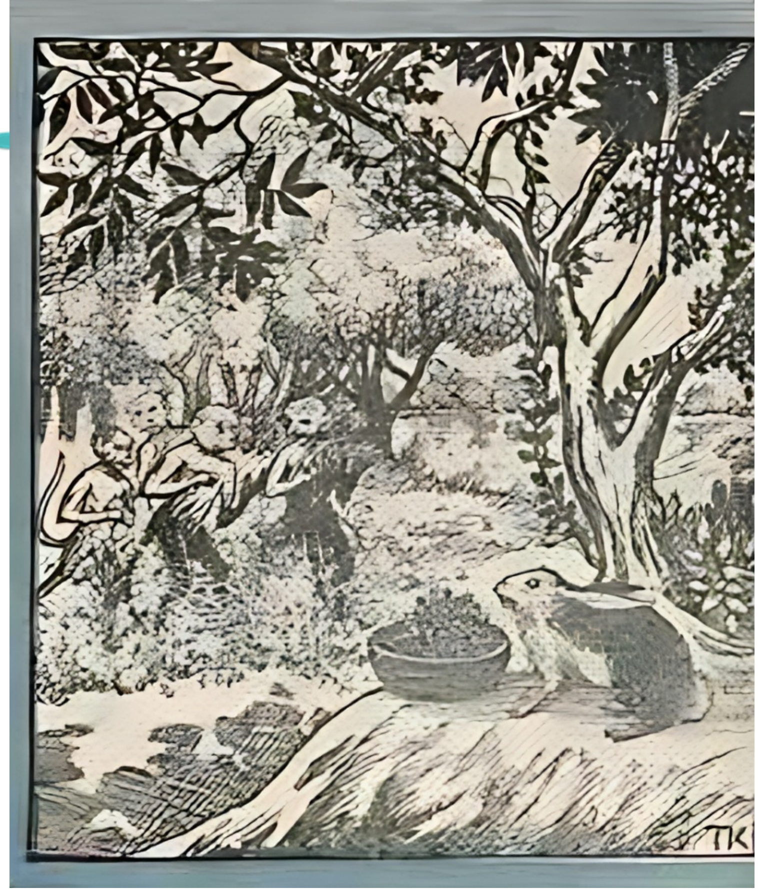
एक दिन खरगोश ने अपना फन्दा फैलाया। रास्ते में एक गढ़ा था। उसने उस गढ़े में सूखे पत्ते, टहनियाँ वगैरह बिठा दी और आग लगा दी। बस, वहाँ बहुत सी राख जमा हो गई। फिर खरगोश ने उस गढ़े को पास-फूस और सूखे पत्तों से ढक दिया।

दूसरे दिन वह बन्दरों के यहाँ गया और उन्हें उस जगह बुला लाया। उसने कहा-

"बन्दर भाइयो ! मैं आप लोगों के सम्मान में एक दावत देना चाहता हूँ। अपनी झाड़ी में सारा इन्तजाम कर आया है। बस, आप लोगों के आने भर की देर है। इसलिए जल्दी आइए। देर न कीजिए। मूरख बन्दरों ने खरगोश की बातों पर विश्वास कर लिया। उन्होने सोचा-"इस बेवकूफ खरगोश को पिछली बातें क्या याद होंगी ?" इसलिए वे उसके पीछे पीछे चले। थोड़ी दूर जाने के बाद खरगोश ने उन्हें नदी का रास्ता दिखाया और कहा-"जाकर पहले नहा आओ सभी !" बन्दर दावत की कल्पना करके खुशी-खुशी नहाने चले।

उसी रास्ते में वह गढ़ा था, जिस का मुँह खरगोश ने घास-फूस से ढक रखा था। वहाँ जाते ही चारों बन्दर धड़ाम से गढ़े में जा गिरे सारे बदन में कालिख लग गई। देखने में काले देव जैसे लगने लगे।

बेचारे बन्दर 'हाय-हाय' करते नदी में नहाने गए। लेकिन भींगने पर कालिख और भी चिपक गई। बेबकूफ बन्दर बहुत बौखला गए। उन्होंने कई बार नहाया-धोया, रगड़ रगड़ कर स्नान किया। लेकिन वह



कालिख दूर न हुई। लाचार होकर वे उसी

तरह खरगोश के पास गए। खरगोश ने उन्हें देख कर बड़े प्रेम से बुलाया-"आओ ! भैया बन्दरों ! देर न करो। मैं तो तुम्हीं लोगों की राह देख रहा था ! वाह ! ये अंगूर कितने मीठे हैं ! यह कह कर वह एक डलिया से अंगूर निकाल कर खाने और बन्दरों को दिखा-दिखा कर ललचाने लगा। तब कहीं वन्दरों की समझ में आया कि खरगोश उन्हें बेवकूफ बना रहा है। लेकिन करते क्या ! सिर धुनने और पछताने लगे कि उन्होंने उसे उस दिन नाहक चकमा दिया था ! सच है,"जैसी करनी वैसी भरनी।"



ऐसे समय एक स्त्री का कण्ठस्वर सुनाई दिया-"बेटा! कौन तुम्हारा बलिदान करने जा रहा है !" सब लोग सन्न रह गए। राजा जो शोक के मारे सिर नीचा किए खड़ा था, चारों ओर देखने लगा।

तब मन्दाकिनी चिल्लाई-"पहले उस अमागे के सिर से मुकुट उतार लो !" पुरोहित ने जो निकट ही खड़ा था, काँपते हुए हाथों से मुकुट उतारना चाहा। उसी समय फिर स्त्री-कण्ठ से ये हृदय विदारक शब्द सुनाए दिए-"यह क्या! बेटा ! आज तेरी यह कैसी हालत है!" अब सब लोग सर ऊँचा कर देखने लगे। राजा और दरबारियों ने तो गन्धर्ब-कुमारी की आवाज पहचान ली। बड़ा कोलाहल हुआ। भगदड़ मच गई।

"राजहंस ! राजहंस ! सुनहरा राजहंस !" आदि शब्द चारों ओर से सुनाई देने लगे। लोगों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

यह एक बहुत बड़ा सुनहरा राजहंस था। उसे देखते ही बहुत से लोग जान गए कि थोड़ी देर पहले जो पुकार सुनाई दी, इसी की थीं और यह गन्धर्ब-कुमारी है। लेकिन कोई नहीं जानता था कि यह कहाँ से आई और इतने दिन तक कहाँ छिपी थी। उस हंस को देखते ही महीपाल "माँ ! माँ !" कह कर दौड़ा गया और उसके गले से लिपट गया। तुरन्त मुकुटधारी महीपाल को अपनी पीठ पर चढ़ा कर वह विचित्र हंस उड़ा और पल में ओझल हो गया। जब राज पुरोहित ने देखा कि हाथ में आई चिड़िया



निकल गई तो चिल्लाया-"पकड़ो! मारो उसे। वह पञ्छी नहीं है!" लेकिन किसी से कुछ न हो सका। मन्दाकिनी और उसके सेवक मुँह बाए देखते खड़े रह गए। हंस आकाश की गम्भीर नीलिमा में विलीन हो गया।

यह भीषण बलिदान देखने जो जो लोग आये थे, वे सभी सोच में पड़ गए। मन्दाकिनी की उतावली, राज-पुरोहित की उत्तेजना आदि बातों की याद करने पर उनकी अकलें और भी तेज़ी से काम करने लगीं। लोग एक दूसरे से पूछने लगे कि किसने वह अफवाह फैलाई थी जिसकी वजह से महीपाल का बलिदान तय हुआ। लेकिन किसी को इस सवाल का ठीक ठीक जवाब न मिल सका।

फिर भी अब सब को खुशी होने लगी कि उस मासूम बच्चे की जान बच गई।

इतने में कुछ दरबारियों ने राजा से कुछ कहा। तुरन्त राजा ने राज-पुरोहित को पकड़ लेने का हुक्म दिया। यह बात मालूम होते ही मन्दाकिनी वहाँ से भागी और रनवास में जा घुसी।

मन्दाकिनी का पिता किरात राज भी वहीं खड़ा था। यह सब गड़बड़ी देखते ही वह चौंक गया कि दाल में कुछ काला है। इसलिए वह भी मन्दाकिनी के पीछे-पीछे दौड़ा। रनवास में जाकर उसने देखा कि उसकी बेटी सेज पर पड़ी तड़प रही है।

तब उसने नज़दीक जाकर माथे पर हाथ फेरते हुए समझाया-"बिटिया ! सोच न कर। जो हो गया सो हो गया। वह बेचारा बच गया; यह भी एक तरह से अच्छा ही हुआ।" यों वह और भी कुछ कहने लगा। उस बेचारे को क्या मालूम था कि उसकी अभागी बिटिया ने जहर खा लिया है!

इतने में मन्दाकिनी कराहती हुई बोली -"पिताजी! माफ कीजिए। आज तक सब लोग मेरी बड़ाई ही करते थे। में नहीं

चाहती कि मेरे उस सुयश पर कलङ्क लग जाए। इसलिए मैं ने जहर खा लिया है। राजपुरोहित तो पकड़े ही गए। कल जब इन्साफ़ होगा तो सच्ची बात सब को मालूम हो जायगी।" इतना कहते-कहते उसे हिचकी आने लगी। वह कराहने और हाथ-पैर मारने लगी मानों अन्दर से अदृश्य ज्वाला की लपटें उसे भून रही हों।

बड़ी मुश्किल से वह अपने को सम्हाल कर बोली-"पिताजी! मेरे नन्हे बच्चे की देख-भाल करते रहिएगा। भैया से भी कहना कि यहीं आकर रह जाए। मेरा अन्त निकट है। मैं ज्यादा कुछ नहीं कह सकती। हाँ, यह भेद खुलने न देना। पिताजी! हाय ! मेरा बच्चा ! नन्हा अर्धपाल !" इतना कहते-कहते मन्दाकिनी ने पाण छोड़ दिए।

किरात-राज रोने और चिल्लाने लगा कि उसकी बेटी ने महीपाल के कारण शोक से जान दे दी।

तब सब लोग दौड़े आए। राजा हर्षपाल भी दौड़ा आया। वह रो-रो कर कहने लगा-"हाय ! मैं कैसा अभागा हूँ ! हाथों-हाथ बड़ी रानी को



गँवाया। तब महीपाल को देख कर सन्तोष किया। लेकिन इतने में यह अकाल आया और वह भी हाथ से निकल गया। फिर भी यह सोच कर सन्तोष हुआ कि कहीं भी हो, जिन्दा तो है! लेकिन इतने में प्यारी मन्दाकिनी मुझे छोड़ कर चल दी। हाय! अब मैं क्या करूँ ! मैंने कौन से घोर पाप किए थे, जिनका यह दण्ड मुझे भुगतना पड़ रहा है।"

पल भर में यह बुरी खबर सारे नगर में फैल गई। सब लोग मातम मनाने लगे। कुछ दिन बाद भरे दरबार में राज-पुरोहित के अभियोग की जाँच हुई। अभियुक्त ने अपना अपराध स्वीकार कर लिया। उसने यह भी बताया कि इस कुचक्र



में सबसे ज्यादा मन्दाकिनी का हाथ था। इतना ही नहीं, उसने कहा कि राजा का ससुर किरात राज इन कृत्यों में बेटी को मदद देने के लिए ही इतने दिन से यहाँ रहता आया है।" इस तरह राजपुरोहित ने सोचा कि उसका दोष कुछ हलका हो जाएगा। लेकिन उसकी बातों पर किसी को विश्वास न हुआ। लोगों ने सोचा-"रानी मर गई है। इसलिए यह झूठे इलजाम लगा कर किसी तरह अपना दोष उनके सिर पर मढ़ने की कोशिश कर रहा है।"

राजा तो पुरोहित की बातें सुन कर आग बबूला हो गया। उसने कहा-"रे दुष्ट ! तेरे ही कारण मेरा प्यारा महीपाल मुझ से बिछुड़ गया। राज्य लोभ से सूने ही प्रजा को भड़काया और दरबारियों को बहकाया। तेरे ही कारण मेरे राज्य में इतनी गड़बड़ी मची। मैं तुम्हें जो भी दण्ड दूँ थोड़ा ही होगा। लेकिन ब्रह्मण अवध्य होता है। इसलिए जाओ! तुरन्त मेरे राज से निकल जाओ। फिर कभी मुँह न दिखाना।" यों राजा ने राज-पुरोहित को देश निकाला दे दिया। लोग उसे देख कर घृणा से मुँह फेरने लगे।

यों राजा द्वारा अपमानित होने और प्रजा द्वारा दुतकारे जाने के बाद राज पुरोहित ने लाज से सिर नीचा कर लिया और भल्लाण राज छोड़ दिया। पीछे मुड़ कर देखा तक नहीं। आज तक कभी उनकी ऐसी बेइज्जती नहीं हुई थी।

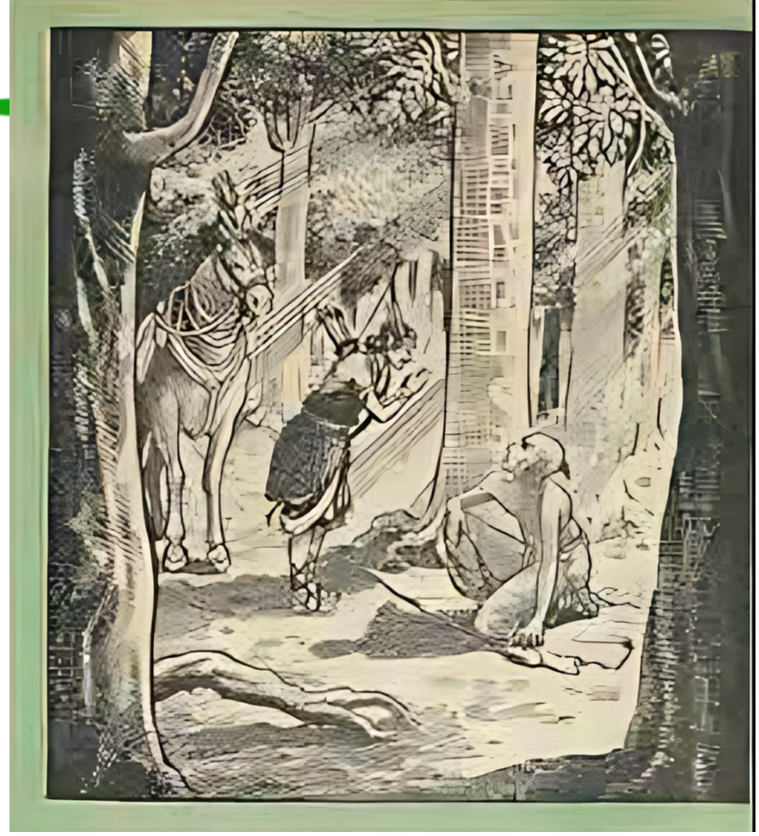
उन्हें इस बात की चिन्ता तक नहीं थी कि उन के चले जाने के बाद परिवार की क्या हालत होगी। यह भी नहीं सूझा कि चलें, बाल-बच्चों और पत्नी को जरा आखिरी बार देख लें। उन्हें तो बस एक ही रट लगी हुई थी। वह यह कि भल्लाण राज की मिट्टी पर अब एक पल भी कदम न टिकाएँ। बस, उनके मन में और कोई विचार न रह गया था।

चलते चलते अन्त में वे एक घने जङ्गल में पहुँचे। थके-माँदे तो थे ही। एक पेड़ के नीचे पड़ रहे। आँखें अपने-आप मुँद गईं। बड़ी देर बाद जब नींद टूटी तो उन्हें किसी के घोड़ा दौड़ाते आने की आवाज सुनाई दी।

पलभर बाद एक नौजवान वहाँ आ पहुँचा। उसने राजगुरु को देखते ही पहचान लिया और नीचे उतर कर सादर प्रणाम किया। यह किरात राज का लड़का और मन्दाकिनी का भाई मन्दपाल था। राजपुरोहित भटकते मटकते किरात राज्य में आ पहुँचे थे।

दूसरे ही क्षण राज पुरोहित किरात राज की भव्य कुटीर में थे और उनकी सब तरह से सेवा सुश्रूषा हो रही थी। राज पुरोहित ने अपनी दुर्दशा का सारा हाल निसङ्कोच सुना दिया। कुछ भी दुराव नहीं रखा।

मन्दपाल ने उनकी बातें गौर से सुनी। वह बड़ा महत्त्वाकांक्षी था। उसके मन में बड़े बड़े हौसले थे। जङ्गल में राज करते करते उसका मन ऊब गया था। वह किसी विशाल देश पर शान-शौकत से राज करना



चाहता था। वह चाहता था एक बड़ी सेना, जिसे देख कर दूसरे राजा लोग डरें। उसकी उमङ्गों के लिए जङ्गल सचमुच छोटा था। लेकिन इतने दिनों से उसे अपनी इच्छा पूरी करने के लिए कोई चारा न सूझा। क्योंकि जङ्गल में पैदा होने और पलने के कारण वह लड़-भिड़ तो सकता था, मगर किसी बात में दिमाग लड़ाना उसके बूते के बाहर था। राजा बनने के लिए लड़-भिड़ सकना जितना जरूरी है, कूटनीति जानना भी उतना ही जरूरी है। इसलिए राजपुरोहित की बातें सुनते ही उसने सोचा-"लो, बिल्ली के भाग से छीङ्का टूटा।" ऐसा अच्छा सहायक उसे और कहाँ



मिलता ? उसने उनको धीरज बँधाते हुए कहा-"गुरुवर ! सोच न कीजिए। आप जैसे बुद्धिमान को यह शोभा नहीं देता। बीर-पुरुष कभी अपनी बीती पर सिर धुनते बैठे नहीं रहते। आइए, मेरी तलवार की बार आप की प्रखर बुद्धि का साथ देगी। अशीर्वाद दीजिए। जिस घड़ी मैं भल्लाण की राजगादी पर बैठूँगा, उसी घड़ी समझ लीजिएगा कि आपके सारे सङ्कट दूर हो गए। तब तक आप तनिक धीरज घरिए।" यह कह कर उसने राज-पुरोहित के अपमान का बदला चुकाने की शपथ ले ली।

राजपुरोहित को बड़ी खुशी हुई। वे सोचने लगे-"मन्दाकिनी की बातों में पड़ कर मैं चौपट हो गया। किरात राज की क्या मन्शा है, यह साफ मालूम नहीं। बड़ा हुलमुल आदमी है। उधर नाती का मोह भी होगा उसे। हाँ, इस मन्दपाल का विश्वास करने में कोई हरज नहीं। क्योंकि यह राजा बनने के लिए सब कुछ करने को उतारू है। इसे राजा बनाने से मेरा भी काम निकल आएगा। बदला भी चुक जाएगा और राज में फिर से मेरी धाक जम जाएगी। ऐसा अच्छा मौका फिर नहीं मिलने का।" यह सोच कर वे बोले-"बेटा! कौन जाने, किस की तकदीर कैसी है! खैर।" फिर तो दोनों आपस में घुल-मिल कर बातें करने लगे।

* * * *

महीपाल अदृश्य हो गया और मन्दाकिनी चल बसी। फिर भी अर्धपाल को देख कर राजा ने सन्तोष किया। अब उसे उससे दुगुनी मुहब्बत हो गई।

यों कई बरस बीत गए। हर्षपाल ने युवराज का विवाह और राजतिलक भी किया। अब उनके दिन सुख से कटने लगे।

कुछ दिन बाद अर्धपाल का एक लड़का भी हुआ। इससे राज के सब लोग बहुत खुश हुए और कुछ दिन तक बड़ी धूम-धाम रही। बच्चे का नाम चित्रभानु पड़ा और वह बड़े लाड़-प्यार से पाला जाने लगा।

एक दिन राजा अर्धपाल के दरबार में एक दूत आया। वह एक चिठ्ठी भी ले आया जो एक सामन्त गुर्जर राज ने राजा को लिखी थी। उस विठ्ठी का सारांश था-"भल्लाण-देश के राजवंश का यह आचार है कि राज तिलक के समय युवराज के शीस पर 'रत्न- मुकुट' रखा जाता है। हम सामन्त लोग उस रक्त-मुकुटधारी राजा के आगे सिर झुकाते और कर चुकाते हैं। लेकिन आज 'रत्न- मुकुट' ही गायब हो गया है। अर्धपाल मुकुटहीन राजा है। उस पवित्र 'रत्न-मुकुट' के बिना जो राज तिलक हुआ, उसका हम अनुमोदन नहीं कर सकते। जिसे राजा ही नहीं कहा जा सकता, उसे कर कैसे चुकाएँ? इसलिए जब तक अर्धपाल के सिर पर 'रत्न- मुकुट' धर कर यथा विधि राज तिलक नहीं होगा, तब तक हम कर नहीं चुकाएँगे।"

हर्षपाल जो युवराज को राज काज सौंप कर निश्चित हो गया था, यह चिठ्ठी सुन कर सोच में पड़ गया।



"हम इस विषय पर विचार करेंगे और अपना निश्चय सूचित करेंगे।" इतना कह कर उसने दूत को भेज दिया।

दूसरे दिन उसने अपने ससुर किरात राज से कहा-"हमारे सामन्त सभी बहुत सीधे-सादे हैं। इतने दिन तक हमें कभी उनसे लड़ने की नौबत नहीं आई। फिर आज उन्हें यह क्या सूझी है !"

किरात राज थोड़ी देर तक सोच-विचार कर बोला -"चिठ्ठी का उत्तर दे देने से कोई फायदा नहीं। इससे तो अच्छा है कि किसी दूत को भेजें। इस हालत में हर ऐरे-ग़ैरे पर विश्वास भी नहीं किया जा

सकता। इसलिए किसी अपने ही आदमी को दूत बना कर भेजना होगा। काम नाजुक है। इसलिए अवश्य किसी चतुर व्यक्ति को भेजना चाहिए।"

हर्षपाल को किरात-राज का कहना पसन्द आया। उसने कहा-"मन्दपाल के रहते किसी और को भेजने की क्या जरूरत है!' इतना कह कर उसने तक्षण मन्दपाल को बुला भेजा।

मन्दपाल के आने पर राजा ने गुर्जर राज की चिठ्ठी उसे पढ़ कर सुना दी और सब बातें समझा दी। उसने कहा-"तुम उन लोगों को समझा देना कि कर न चुकाने का नतीजा बहुत बुरा होगा। रत्न-मुकुट धारण एक आचार मात्र है। कर चुकाने से उसका कोई सम्बन्ध नहीं। जो इस बहाने राजा की आज्ञा टालने की कोशिश करेंगे, वे राज-द्रोही माने जाएँगे और कड़ी सजा पाएँगे। यों उन्हें पहले समझा-बुझा देना। नहीं मानेंगे तो डरा-धमका देना।" इतना कह कर उसने अपनी अंगूठी उतार कर उसे दे दी और कहा-"हर बारह कोस पर एक राजभवन होता है। वहाँ जाकर यह अंगूठी दिखा देना। बस, तुम्हारे लिए सारी सुविधाएँ हो जाएँगी।"

फिर किरात-राज ने भी अपने बेटे को समझाया-"बेटा! तुम राजा के काम पर जा रहे हो। एक बात अवश्य याद रखना- किसी के कान में इसकी भनक तक न हो।"

रात-दिन सफर करते हुए मन्दपाल आगे बढ़ चला। वह हर बारह कोस पर राज-भवन में थोड़ी देर आराम करता और घोड़ा बदल कर आगे बढ़ता जाता। इस तरह उसने तीन दिन तक सफर किया। चौथे दिन रात को बहुत थका-माँदा होने के कारण उसे लेटते ही नींद आ गई। राज-भवन में सन्नाटा था। ठीक आधी रात के वक्त--

[सशेष]





कहते हैं कि किसी गाँव में एक किसान रहता था। उसकी लक्ष्मी नाम की एक सयानी लड़की थी।

किसान ने बड़ी धूम-धाम से अपनी इकलौती लड़की का ब्याह किया। जमाई भी मिला बड़ा खूबसूरत। हाँ, जरा सनकी जरूर था।

इस लड़के का नाम था शङ्कर। व्याह के कुछ ही दिन बाद शङ्कर अपनी बहू को लिवा ले जाने के लिए ससुराल आया। "भैया! कौन सी जल्दी आ पड़ी है। कुछ दिन और रहने दो यहाँ। समय आने पर हम खुद ही उसे भेज देंगे। बीच-बीच में परब-त्यौहार को तुम आते-जाते रहोगे ही!" सास-ससुर ने उसे समझाया। लेकिन जमाई ने जिद्द की-"मैं यह सब नहीं जानता। साफ-साफ बताइए! आप आज उसे मेरे साथ मेजते हैं कि नहीं।"

लाचार होकर किसान ने पडितजी को बुला भेजा और साइत देखने को कहा। पडितजी ने पोथी-पत्रा पलट कर कहा-"नहीं भैया ! आज तो नवमी है। आज कहीं आना-जाना नहीं होता। कल दशमी है। दिन अच्छा है। कल बिदा कर देना।"

किसान ने दामाद से कहा-"सुन लिया न बेटा, पडितजी का कहना ?" लेकिन जमाई को क्रोध आ गया। उसने कहा-"वाह! तो मैं अपनी ही स्त्री को नहीं ले जा सकता! नवमी हो या दशमी ! मुझे क्या ? कुछ भी हो, मैं आज उसे यहाँ से जरूर ले आऊँगा। आप उसे इसी बक्त विदा कर दीजिए।"

किसान की स्त्री को डर लगने लगा कि कहीं जमाई को कोष न आ जाए। उसने तुरन्त कलेवा वगैरह तैयार कर दिया। आखिर रो धोकर किसी तरह उन्होंने

चन्द्रशेखर पाण्डे

अपनी लाड़ली बिटिया को नवमी के दिन ही बिदा कर दिया।

*   *   *   *

हफ्ते के हर एक दिन का एक एक देवता स्वामी होता है। रविवार का देवता सूरज होता है तो सोमवार का देवता चन्द्रमा। अन्य पाँचों दिनों के भी पाँच देवता स्वामी होते हैं। इसी तरह पन्द्रहों तिथियों के पन्द्रह देवता स्वामी होते हैं। इन देवताओं को 'पुरुष' कहा जाता है।

नवमी के स्वामी देवता का नाम 'नवमी-पुरुष' होता है। इस नवभी-पुरुष की आज्ञा है कि नवमी के दिन सब लोग चैन से अपने-अपने घर में बैठे रहें; कहीं कोई आए जाए नहीं। इसीलिए बहुत से हिन्दू नवमी के दिन कोई यात्रा नहीं करते। वे मन ही मन डरते हैं कि इससे नवमी-पुरुष नाराज हो जाएँगे।

*   *   *   *

हाँ तो, जब शङ्कर ने सास ससुर की बात न मानी और जिद्द करके अपनी बहू लक्ष्मी को नवमी के दिन ससुराल से ले चला तो नवमी-पुरुष को क्रोध आ गया। उन्होंने सोचा-"इसे एक पाठ पढ़ाना चाहिए।"



उस समय शङ्कर और उसकी पत्नी एक शहर की बगल से चले जा रहे थे। थोड़ी देर में उन्हें जोर की भूख लगी। दोनों ने एक पेड़ की छाँह में बैठ कर कलेवा किया। तब कहीं उन्हें याद आया कि लोटे में पानी नहीं है। आखिर शङ्कर लक्ष्मी से बोला-"अरी ! तू यहाँ बैठी रह। में जाता हूँ। झट कहीं से पानी ले आता हूँ।" इतना कह कर शहर लोटा लेकर पानी की खोज में चला।

मौका पाकर नवमी-पुरुष ने ठीक शङ्कर का-सा रूप बना लिया और लोटे में पानी



वह तीर की तरह दौड़ा और हाँफते हुए किसी तरह जाकर उनको पकड़ पाया।"अबे, कौन है तू ? भागता है अभी कि लगा हूँ दो चार घूँसे!" उसने उस दुस्साहसी पुरुष को धमकाया।

उसकी बातें सुन कर नकली शङ्कर ने अचरज दिखाते हुए कहा-"वाह भैया! होश में हो कि नहीं। यह तुम्हारी पत्नी कब से हो गई। यह तो मेरी जोरू है। अभी मायके से ससुराल जा रही है ! सास-ससुर ने बहुत समझाया-'इसे आज न ले जाओ! कल ले जाना।' लेकिन मैंने उनकी एक न सुनी और इसे तुरन्त विदा कर देने को मजबूर किया!" इतना कह कर उसने लक्ष्मी की तरफ मुड़ कर कहा-"अच्छा जी! इस पागल से हमें क्या ! जल्दी चलो, दूर जाना है।" यह कह कर वह आगे बढ़ चला। शङ्कर को क्रोध तो आया ही साथ ही साथ बहुत दुख भी हुआ। उसने राह रोक कर कहा-"अरी! इसके धोखे में न आ जाना ! यह तो कोई लुच्चा, बदमाश है ! जरा नजर उठा कर देख। मुझे नहीं पहचान सकती ?नहीं जानती कि मेरे कन्धे पर एक तिल है। देख ले तू ही!" यह कह

लेकर उस जगह आया जहाँ लक्ष्मी बैठी हुई थी। फिर शङ्कर की सी आवाज बना कर बोला-"पानी पीकर जल्दी चल ! हमें अन्धेरा होने के पहले ही अपने गाँव पहुँचना है।" लक्ष्मी ने सोचा कि सचमुच वही उसका पति है। वह पानी पीकर उसके पीछे चल दी।

थोड़ी देर बाद जब सच्चा शङ्कर लोटे में पानी भर कर लौट आया तो लक्ष्मी को पेड़ के तले न देख कर घबरा गया। जब उसने मुड कर अपनी नजर चारों ओर दौड़ाई तो बड़ी दूर पर का हरा आँचल झलक गया। बगल में एक पराए मरद को देखकर बेचारे का कलेजा धक से रह गया।



कर उसने वह तिल दिखाया। लेकिन नकली शङ्कर के कन्धे पर भी ठीक वैसा ही एक तिल था। यह देख कर लक्ष्मी दुविधा में पड़ गई।

इतने में उस नगर का राजा अपने मन्त्री और दरबारियों के साथ घूमते हुए उधर से आ निकला। "क्या गड़बड़ी है ?" उस ने इन तीनों से पूछा। कोई कुछ नहीं बोला। अन्त में लक्ष्मी ने कहा-"राजन ! पुराने जमाने में दमयन्ती की जो हालत हुई थी, वही आज मेरी भी हो रही है। दमयन्ती को उस समय स्वयम्बर मन्डप में पाँच नल दिखाई दिए। उसी तरह आज मेरे एक ही सूरत शकल वाले दो पति दिखाई दे रहे हैं। भला आप के सिवा इस धर्म-सङ्कट से मुझे और कौन उबार सकता है ?"

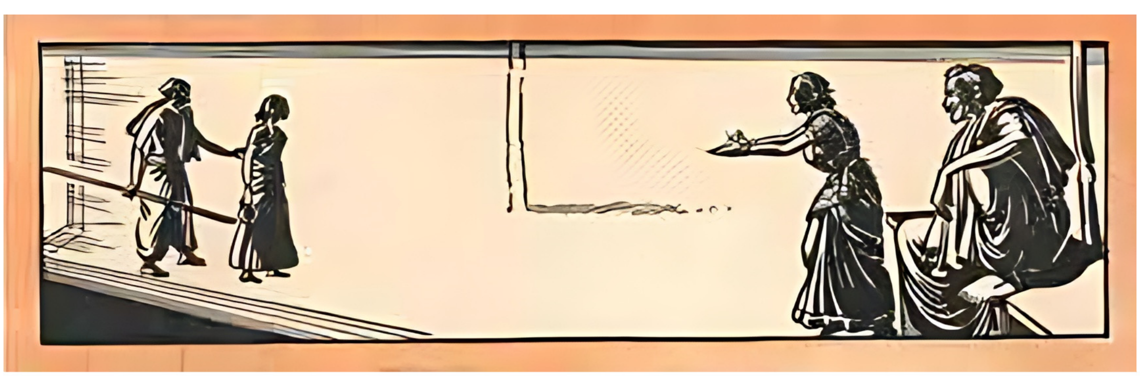
लक्ष्मी की बातें सुन कर राजा ने मन्त्री की तरफ देखा। मन्त्री ने मन में सोचा-"दमयन्ती के स्वयम्बर में नल तो एक ही था ! बाकी चारों देवता लोग थे। उसी तरह इन दोनों में भी एक जरूर देवता होगा। अब कौन देवता है और कौन मनुष्य, यह जानने के लिए इन दोनों की कोई ऐसी परीक्षा लेनी चाहिए, जिस में सिर्फ देवता ही सफल हो सकता हो।" यह सोच कर उसने दोनों को नजदीक बुलाया। एक का लोटा लिया और धरती पर रख कर बोला-"तुम दोनों में जो इस तङ्ग मुँह वाले लोटे में पैर घुसा कर निकाल ले, वही इस स्त्री का पति है। तब नकली शहर याने नवमी पुरुष ने सोचा-"वाह ! यह भी कोई परीक्षा है। यह तो मेरे लिए बाए हाथ का खेल है ! चलो, यह भी अच्छा ही हुआ। लक्ष्मी मुझे मिल जायगी और अब इस जिद्दी शङ्कर को रुला रुला कर छोड़ूँगा।" यह सोच कर उसने शङ्कर को परेशान करने के ख्याल से लोटे में तुरन्त

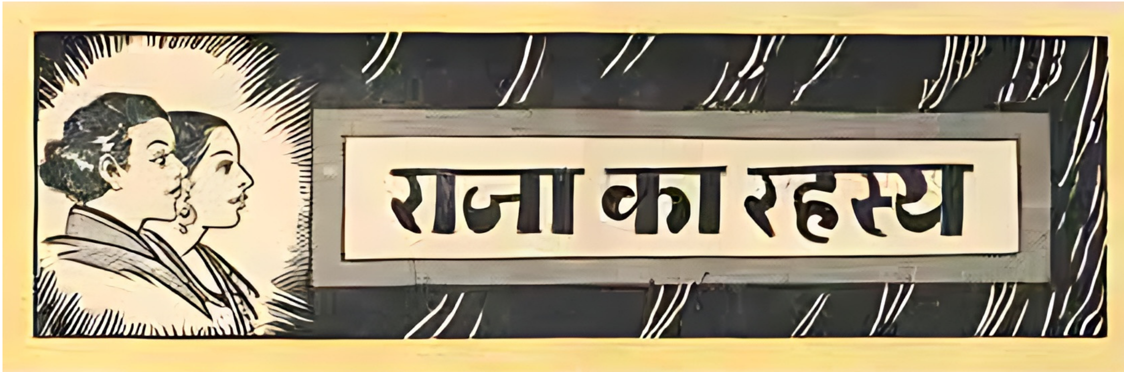
पैर घुसा दिया और आसानी से बाहर निकाल भी लिया। फिर खुशी से मुसकुराते हुए लक्ष्मी के पास आया और बोला-"आओ ! अब साबित हो गया कि मैं ही तुम्हारा पति हूँ। अब किसी को कोई शक न रहेगा। फिर राजा और मन्त्री तो बड़े बुद्धिमान आदमी हैं।"

तब लक्ष्मी रोती धोती उसके पैरों से लिपट गई और बोली-"भगवन ! आप जरूर कोई देवता हैं; मनुष्य नहीं! ऐसा असम्भव कार्य मनुष्य कैसे कर सकते हैं? जरूर हम से अनजान में कोई चूक हो ने गई है और आप नाराज हो गए हैं। इसीलिए आप हमें इस तरह दण्ड दे रहे हैं!" भोली-भाली लक्ष्मी का यों आँसू बहाना देख कर नवमी-पुरुष का हृदय पिघल गया और उसने निजरूप में प्रत्यक्ष होकर कहा-"लक्ष्मी ! भूल तुम ने नहीं, तुम्हारे पति ने की। उसने आज यात्रा करके मुझे नाहक गुस्सा दिलाया। इसलिए मैंने सोचा कि जरा उसे एक सबक सिखा दूँ।"

तुरन्त शङ्कर ने नवमी-पुरुष के पैरों पड़ कर माफी माँगी और बोला-"क्षमा करो देवता। अज्ञानवश मुझ से भारी चूक हो गई। फिर कभी ऐसी धृष्टता नहीं करूँगा।" तब कहीं नवमी-पुरुष का गुस्सा ठण्डा पड़ गया और वह उन दोनों को आशीर्वाद देकर अदृश्य हो गया।

लक्ष्मी ने कहा-"बला टल गई। चलिए, अब आगे बढ़ चलें !" लेकिन शङ्कर मन ही मन कॉप कर कहा-"नहीं, नहीं! चलो, लौट चलें। एक दिन में कुछ बिगड़ा नहीं जाता। कल तड़के उठ कर चल देंगे।" बस, वे दोनों उलटे पैर लौट गए। जमाई को बिटिया के साथ लौट आते देख कर बेचारे किसान और उसकी पत्नी को अचरज तो हुआ, मगर वे बहुत खुश भी हुए। दोनों ने सानन्द उनका स्वागत किया।





किसी समय पुलिन्द देश पर मणिसिंह नाम का राजा राज करता था। उससे राज के सब लोग बहुत घृणा करते थे। इसकी एक वजह थी। किसी ज्योतिषी ने उस राजा से कह दिया था कि तुम्हारे राज्य में जब जुड़वाँ पैदा होंगे तो तुम्हारा वंश निर्मूल हो जायगा। इस लिए उस राजा ने ऐलान कर दिया कि जिन-जिन के घर में जुड़वाँ पैदा हों वे आकर तुरन्त सूचना दें।

कुछ लोगों ने ऐलान के मुताबिक आकर सूचना दी। राजा ने सूचना पाते ही उन जुड़वें बच्चों को मरवा डाला। अब राज के सब माता-पिता जुड़वों का नाम लेते ही काँपने लगे।

पुलिन्द देश के ही एक गाँव में देवराज और चन्द्रा नाम के गरीब पति-पत्नी रहते थे। बेचारी चन्द्रा गर्भवती थी और उन दम्पति को डर लग रहा था कि कहीं जुड़वें न पैदा हों। खास कर चन्द्रा तो बहुत चिंतित हुई और कहने लगी-"हाय ! इस राज में तो बाँझ ही भाग्यशालिनी है।"

आखिर देवराज ने किसी तरह धीरज धर कर पत्नी को भी समझाया। उसने घर का भेद किसी पर खुलने न दिया। प्रसव-काल निकट जाने पर उसने अपनी बूढ़ी सास को बुला भेजा।

यह बुढ़िया राजा मणिसिंह के रनवास में नौकरानी का काम करती थी। राज-महल की नौकरानियाँ अकसर किले में ही रहती है, जिससे बुलावा आने पर जल्दी पहुँच जाएँ। इसलिए यह बुढ़िया भी राजा के किले में ही रहती थी।

जो सोचा था वही हुआ। बेचारी चन्द्रा के जुड़वाँ पैदा हुए। एक लड़की और एक लडका, जिनके नाम विजया और विक्रम रखे

धर्मदत्त मेहरा



गए। उन दोनों को वे दम्पति गुप्त रूप से बड़े लाड़-प्यार के साथ पालने लगे।

इस तरह ज्यों ही उधर राज में जुड़वाँ पैदा हुए, त्यों ही राजा के मन में एक तरह की बेचैनी पैदा हो गयी। एक तरह का खटका पैदा हो गया, जो दिन दिन बढ़ता ही गया। आखिर राजा का खाना-पीना हराम हो गया। रोज रात को बुरे सपने आने लगे।

फिर तो राजा ने ज्योतिषियों को बुला कर इसका कारण पूछा। उन लोगों ने पोथी पत्रे पलट कर कहा-"आपके राज में कही जुड़वाँ बच्चे पैदा हो गए है। इसी से आपके मन में इस तरह बेचैनी पैदा हो गयी है।"

तुरन्त राजा ने सारे राज में ढिँढोरा पिटवा दिया-"इस राज में कहीं जुड़वाँ पैदा हो गए हैं। जो उनका पता लगा कर राजा को सूचना देगा, उसे मुँह माँगा ईनाम मिलेगा।" यहाँ तक कि देवराज जिस गाँव में रहता था उस गाँव में भी यह ढिँढोरा सब ने सुन लिया। अब बेचारे देवराज का दिल दहल गया। लेकिन साहसी होने के कारण उसने हार नहीं मानी। किसी तरह अपनी पत्नी को समझा-बुझा कर, वह बेटे विक्रम को साथ लेकर घर से भाग निकला।

अनेकों कष्ट उठा कर देवराज अपने लड़के के साथ आखिर किसी तरह उत्कल-राज्य पहुँच गया। उत्कल एक छोटा सा प्रदेश था जिसका शासक पुलिन्द के राजा को कर चुकाता था। उत्कल के राजा के बारह साल का एक लड़का था। देवराज का लड़का भी उसी का हमउम्र था। जब देवराज ने उस राजा के यहाँ नौकरी कर ली तो इन दोनों में बड़ी मित्रता हो गईं। यहाँ तक कि दोनों एक दूसरे से बिछुड़ कर पल

भर भी रह न सकते थे। उधर उत्कल का राजा भी देवराज पर बड़ी कृपा रखता था। इसलिए उसकी बहुत जल्दी तरक्की हो गई। कुछ ही दिन में देवराज अपनी चतुरता और वीरता से राजा को प्रसन्न करके उसका प्रधान सेनापति बन गया।

* * * * *



अब जरा उधर पुलिन्द में देवराज की पत्नी और बेटी का हाल सुन लीजिए। पति के चले जाने के बाद चन्द्रा से अकेली न रहा गया। वह अपनी बिटिया को लेकर माता के पास चली गई और किले में रहने लगी।

बेचारी बुढ़िया की जान आफत में पड़ गई। पानी में रह कर मगर से बैर ! लड़की नातिन की जान अब कैसे बचाई जाय ? कहीं भेद खुल गया तो !

लेकिन बुढ़िया बहुत समझदार थी। वह नातिन को पुरुष रूप में पालने लगी। सब से कहती "यह मेरा नाती विजय है।" कुछ दिन बाद सब लोग उसे लड़का ही समझने लगे। किसी को शक भी न हुआ कि वह लड़की है।

एक बार विजया अपनी नानी के साथ रनवास में गई। वहाँ उसने अपनी जिन्दगी में पहली बार एक आदम-कद आइना देखा। उस बेचारी ने तब तक कभी आइना न देखा था। उसे भान तक न था कि आइना होता कैसा है !

इसलिए जब उसने पहली बार आइने में अपने आप को लड़के के भेष में देखा तो चिल्लाई-"भैया! भैया!" उसकी आवाज एक नौकरानी ने सुन ली। वह दरवाजे की आड़ में खड़ी होकर देखने लगी कि क्या हो रहा है !

इतने में उधर से विजया की नानी आ गई। वह अपनी नातिन की नादानी समझ



गई। उसने तुरन्त उससे सारा भेद खोल दिया और कहा-"तुम जुड़वाँ हो और लड़की हो। तुम्हारा भाई दूसरी जगह पल रहा है। इस राज में जुड़वों की खैर नहीं। इसीलिए तुम लड़के के भेष में पल रही हो !" उसने चेता भी दिया कि यह भेद किसी को मालूम होने न देना चाहिए। नौकरानी जो दरवाजे की ओट खड़ी खड़ी सारी बातें सुन रही थी, दौड़ी गई और जाकर राजा से सारा हाल सुना दिया। तुरन्त राजा ने बुढ़िया और उस की नातिन को पकड़ लेने का हुकम दिया। वह उनको सताने और पूछने लगा कि "बताओ ! दूसरा बच्चा कहाँ है ?" बुढ़िया ने बहुत यन्त्रणा भोगी। लेकिन नाती का पता नहीं बताया। आखिर निर्दई राजा ने उसे मरवा डाला। बुढ़िया और विजया के गिरफ्तार होते ही चन्द्रा भाग गई थी। वह बहुत से कष्ट सहने के बाद आखिर उत्कल-राज पहुँच गई और पति और पुत्र से मिल कर अपने सारे दुख भूल गई।

इधर पुलिन्द के राजा ने विजया को भी बहुत सताया। लेकिन वह बेचारी कुछ भी न बता सकी। वास्तव में वह अपने भाई का पता जानती भी न थी। आखिर राजा ने कुछ सोच-विचार कर उसकी लिखावट ले ली। फिर उसने चारों ओर दिए भेज दिए कि "जाओ और ढूँढ कर ऐसी लिखावट वालों का पता लगाओ!"

यों कुछ दिन बीत गए। भेदियों ने सारा राज छान डाला। लेकिन एक भी ऐसा आदमी न मिला, जिसकी ठीक वैसी ही लिखावट हो।

राजा धीरे धीरे हार मान चला था कि एक दिन उत्कल-राज से एक दूत दरबार में आया। उसने राजा को एक चिठ्ठी दी। राजा ने जब चिठ्ठी खोल कर देखी

तो लिखावट विजया की सी थी। उसे बहुत आश्चर्य और आनन्द भी हुआ।

यह उत्कल के राजा की चिट्ठी थी और उसमें लिखा था-"राजन! हम अस्सी गाड़ियों पर बोरों में भर कर अशर्फियों भेज रहे हैं। यह तुच्छ भेंट स्वीकार करें और इस दीन पर कृपा बनाएँ रखें !"

राजा यह सन्देश पढ़ कर बहुत खुश हुआ। उसने कहा-"बहुत अच्छा ! हाँ, यह चिट्ठी जिसने लिखी, इसे भी साथ भेज देना। हम उससे मिलना चाहते हैं।" यह उत्तर पाकर दूत चला गया।

कुछ दिन बाद अस्सी गाड़ियाँ उत्कल देश से आई और पुलिन्द के किले के बाहर ठहरी। तुरन्त राजा को खबर भेजी गई। राजा कुछ सिपाहियों को साथ लेकर स्वयं उत्कल-राज की भेंट स्वीकार करने आया। वास्तव में वह उस लिखावट वाले बीर को देखना चाहता था जो उसकी जिन्दगी और मौत का सवाल तय कर सकता था। पहली गाड़ी से जो जवान उतरा वहीं विक्रम था। उसने राजा को सादर प्रणाम किया। उसे देखते ही राजा के मुँह पर स्याही फिर गई।



विक्रम विजया से बिलकुल मिलता-जुलता था। दोनों में कोई अन्तर न था।

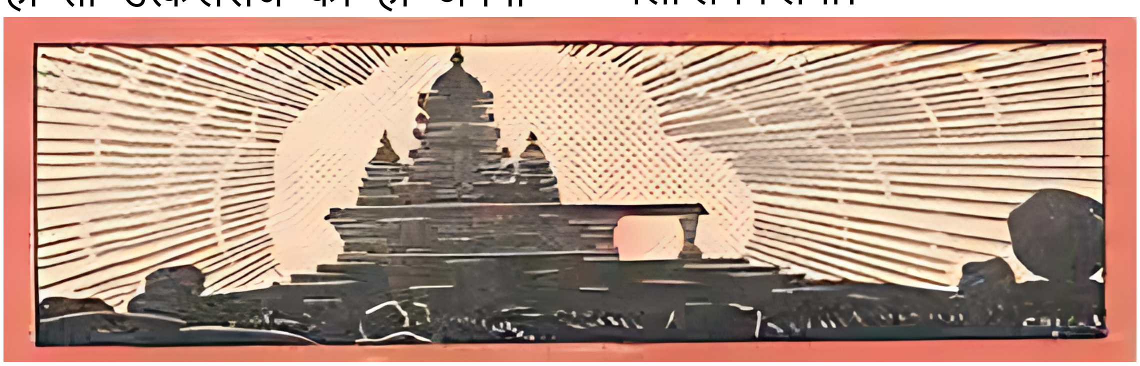
आखिर राजा ने किसी तरह अपने आप को सम्हाला और विक्रम से उत्कल के राजा की कुशल पूछी। उधर उसने मन ही मन निश्चय कर लिया था कि विक्रम को मार डालने से उसका खटका दूर हो जायगा। इसीलिए जब विक्रम ने बोरे उतारने की इजाजत माँगी तो राजा ने 'हाँ' कह दिया और उधर चुपके से अपने सिपाहियों को इशारा कर दिया कि "इसे पकड़ लो।" सिपाही आगे बढ़े ही थे कि अचानक बोरों को चीर कर अस्सी गाड़ियों में से

सैकड़ों बीर कूद पड़े। सभी के हाथों में नङ्गी तलवारें चमचमा रही थी। पल भर में राजा के सभी सिपाही धूल चाटने लगे। इस गड़बड़ी में किसी ने राजा को भी मार डाला। यों अत्याचार की जड़ ही कट गई।

राजा मणिसिंह के मरने से उसके राज में किसी को अफसोस न हुआ। लोगों ने सोचा-"भला हुआ, जो पिण्ड छूट गया।" किले के निवासियों ने बड़े प्रेम से विक्रम और उसके साथियों का स्वागत किया। जब उन लोगों को मालूम हुआ कि विक्रम विजया का भाई है तो और भी खुशी हुई। उसकी वीरता और चतुरता की सभी प्रशंसा करने लगे। आखिर सब लोगों ने एकत्र होकर सोच-विचार किया और विक्रम को राजा बनाने की इच्छा प्रगट की। लेकिन विक्रम को यह मञ्जूर न हुआ। उसने कहा-"मैं उत्कल देश के राजा का सेवक मात्र हूँ। मैं राज्य मार कैसे सम्भाल सकता हूँ? हाँ, आप लोगों की इच्छा हो तो उत्कलराज को ही अपना राजा बना लें।" लोगों ने उसकी बात ख़ुशी से मान ली। इस तरह विक्रम की चतुरता से उत्कल-राज्य स्वाधीन ही नहीं हुआ, बल्कि पुलिन्द जैसा विशाल राज्य भी उसमें सम्मिलित हो गया।

विक्रम की उदारता से प्रसन्न होकर उत्कल के राजा ने अपने बेटे को राजा बना दिया और विक्रम को उसका मन्त्री। कुछ दिन बाद बड़ी धूम-धाम के साथ विक्रम का उत्कल-राज की पुत्री से विवाह भी हो गया। इस तरह दोनों राज्यों के लोगों का नाता और भी मजबूत हो गया और सब लोग मुख से रहने लगे। जुड़वों के बारे में जो काला कानून था वह तो उठा ही दिया गया।

विक्रम ने अपनी नानी की कुरबानी की याद में एक भव्य भवन बनवा दिया। दूर दूर से लोग उसे देखने आने लगे और हर साल वहाँ एक मेला लगने लगा।





कई सौ बरस पहले फारस में एक महाकवि रहता था जिसका नाम फिरदौसी था। फिरदौसी ने 'शाहनामा' नाम का एक महा-काव्य लिखा है। इसे लिखने में उसे एक-दो बरस नहीं, पूरे तीस बरस तक कड़ी म्हणत करनी पडी थी।

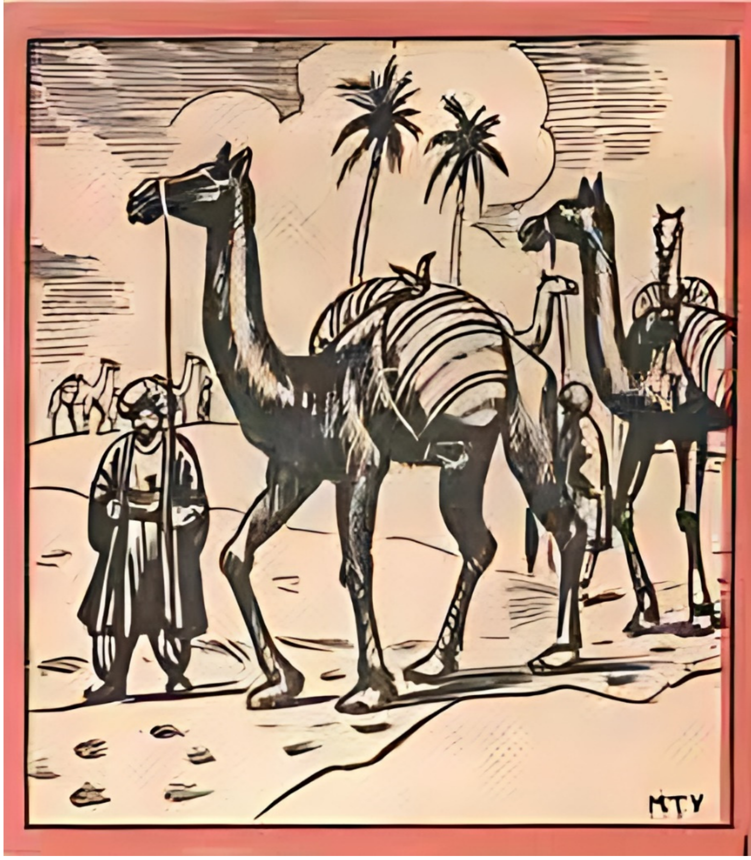
फिरदौसी के इस महा-काव्य में फारस के बादशाहों की जीवनियाँ हैं। इस काव्य के लिखने में उसे अपनी पूरी प्रतिभा का उपयोग करना पड़ा था। 'शाहनामा' में साठ हजार पद हैं। एक एक पद एक एक अमूल्य मणि है और एक से एक बढ़ कर है। कविता की मधुरता का तो कहना ही क्या है ? वास्तव में शाहनामा फारसी की कविता-कुमारी का मुकुट है। इसके रचना की महानता का अन्दाज लगाना भी मुश्किल है।

कहा गया है-"भूखे भजन न होइ गोपाला !" हरेक इन्सान को सब से पहले पेट की फिक्र करनी पड़ती है। बेचारा कवि भी पेट का ही गुलाम है। फिरदौसी को शाहनामा लिखने की प्रेरणा मिली थी मुहम्मद गजनी से। इस सुल्तान ने वचन दिया था कि वह कवि के एक एक पद के लिए सोने का एक सिक्का देगा। उसने कुरान की कसम खा कर कवि को अपनी बात पर विश्वास दिलाया था।

सुल्तान की बातों पर कवि ने पूरा पूरा विश्वास किया। उसने तीस साल तक रात-दिन मेहनत करके शाहनामा पूरा किया। इसकी एक बड़ी वजह भी थी। वह यह कि कवि की लाड़ली लड़की सयानी हो गई थी। कवि के मन में बड़ी इच्छा थी कि वह अपनी इकलौती लड़की का व्याह किसी अमीर घराने में धूम-धाम से करें। इसलिए रुपए की उसे बड़ी जरूरत थी।

बेचारा फिरदौसी यह सोच कर निश्चिन्त हो गया था कि सुल्तान उसे बहुत सा धन

जीवनलाल



देंगे और उसकी इच्छा अवश्य पूरी हो जाएगी। इसी आशा में वह इतने दिन तक धीरज घर कर, शाहनामा जैसा लम्बा ग्रन्थ पूरा कर सका।

काव्य पूरा करते ही कवि ने सुल्तान के पास खबर भेजी। लेकिन हाय ! इस बीच में सुल्तान की नीयत बदल गई थी। बहुत से दरबारी फिरदौसी से जलने लग गए थे। उन लोगों ने सुल्तान के कान खूब भर दिए थे। सुल्तान को अब फिरदौसी से पहले की सी मुहब्बत न रह गई थी। इसलिए काव्य पूरा होने की खबर पाकर, उसने अपने वचन के अनुसार, सोने के सिक्के भेजने के बदले, ऊँटों पर बोरों में लदवा कर चाँदी के सिक्के भेजे।

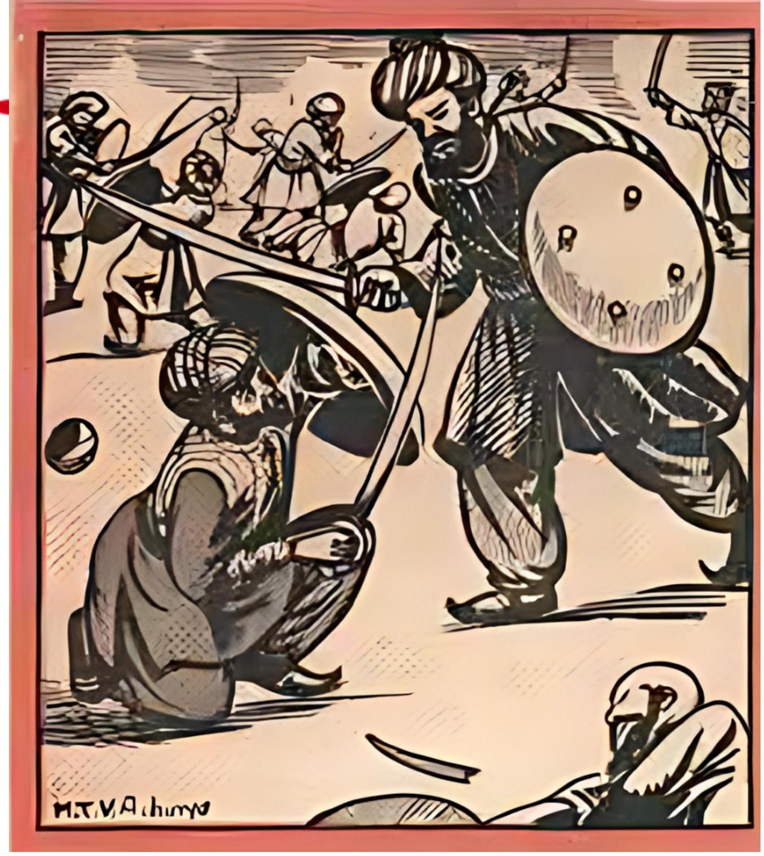
सुल्तान अपनी बात से क्या फिर गया कि कवि की आशाओं पर पानी फिर गया। जिसे अमूल्य रत्न समझा था, वह बस, काँच का एक टुकड़ा निकला। फिरदौसी शोक से पर कटे पञ्छी की तरह धूल में लोटने और तलकने लगा। शाहनामा में उसने जो जो नीति वाक्य लिखे थे उन्हें पल में भूल गया। मर्माहित होकर वह सुल्तान को कोसने लगा।

जब चाँदी के सिक्के लदे ऊँट दरवाजे पर पहुँचे तो कवि के क्रोध का ठिकाना न रहा। उसने उन बोरों के मुँह काट दिए और ऊँटों को मार-पीट कर खदेड़ दिया। चाँदी के टुकड़े जो अमूल्य कविता के बदले मिले थे, धूल में बिखर कर दमकने लगे। फिरदौसी से अब एक क्षण भी वहाँ न रहा गया। वह अपनी लड़की को लेकर तुरन्त चल दिया और परदेश जाकर गरीबी में छुपे छुपे ज़िन्दगी बिताने लगा। बेचारा एक ही दाँव में सब कुछ हार बैठा था।

कुछ साल बाद सुल्तान मुहम्मद गजनी को एक दुश्मन से लड़ने जाना पड़ा। उस लड़ाई में सुल्तान की ही हार होने लगी।

उसके सिपाही पीठ दिखा कर भाग चले। सुल्तान लाचार हो गया। आखिर उसने अपने वजीर को बुला कर पूछा कि अब क्या किया जाय ! तब वजीर ने एक शेर पढ़ा। उसका माने था-"युद्ध-क्षेत्र में जो हार नहीं मानता, दुश्मन का इन्तजार करते बैठा नहीं रहता, बल्कि आगे बढ़ कर खुद ही पहला वार करता है, उसी की अन्त में जीत होती है।" यह शेर सुन कर सुल्तान बहुत खुश हुआ। उसकी रगों में नया जोश लहरें मारने लगा। उसने वजीर को हुक्म दिया-"जाओ! हाँक लगा कर उन भगोड़ों को लौटा लाओ।" वह खुद भी नये जोश से दुश्मनों को ललकार कर, जान की भी परवाह न करके जूझने लगा। इस तरह उसकी हार होते होते बच गई।

उस शाम को जब दुश्मन लोग सुस्ता रहे थे, गजनी ने अचानक उन पर धावा बोल दिया। ये बेचारे हड़बड़ा कर उठे। लेकिन वहाँ तलवार म्यान से निकालने तक का भी समय न था। पलक मारते-मारते गजनी ने मैदान मार लिया। यह सब उस शेर की करामात थी जो, उसने सबेरे बजीर से सुनी थी।



दूसरे दिन जब सब लोग जीत की खुशियाँ मना रहे थे, तो सुल्तान ने वजीर को बुला कर पूछा- "वजीर जी कल आपने जो शेर सुनाया था, वह किसका लिखा हुआ है!" "हुजूर! वह अभागे फिरदौसी के शाहनामा का शेर है। गुस्ताखी माफ हो ! वह शेर भूल से निकल गया था मेरे मुँह से।" वजीर ने डरते-डरते जवाब दिया। सुल्तान के मुँह पर काटो तो खून नहीं; ऐसा लगा जैसे किसी ने जोर से तमाचा मार दिया हो। वह सन्न-सा रह गया। कवि के प्रति कैसा अन्याय किया था उसने? दरबारियों के चकमे में

आकर कैसा अनमोल रतन गँवा दिया। सुल्तान ने लाज से सिर नीचा कर लिया। उसने झट बजीर को हुक्म दिया-"जाओ ! सारा राज छान मारो और फिरदौसी को ढूँढ निकालो! साठ हजार सोने के सिक्के ले जाओ और उनके कदमों में रख दो ! और कहना बादशाह बहुत शर्मिंदा हैं और अपने किए की माफी चाहते हैं।"

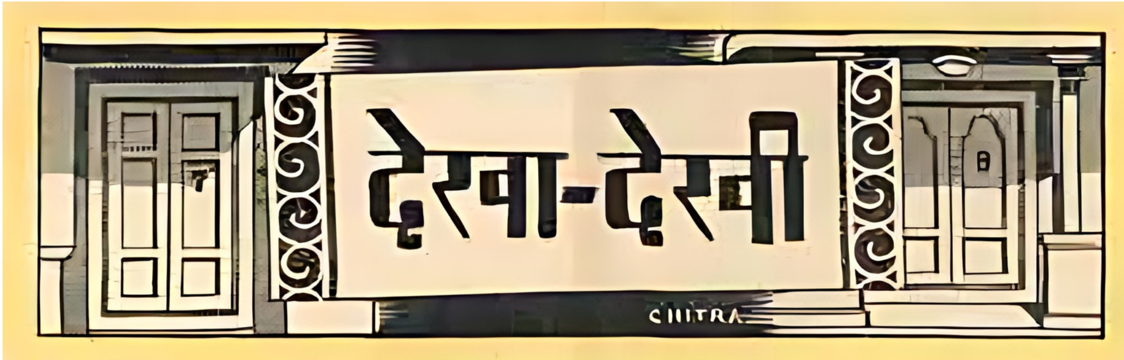
वजीर ने तुरन्त साठ ऊँटों पर बोरों में सोने के सिक्के लदवा लिए और फिरदौसी की खोज में चला।

लेकिन जब तक उसे फिरदौसी का पता चला और वह अशर्कियाँ लेकर पहुँचा, तब तक बड़ी देर हो गई थी। उसके आने के पहले ही फिरदौसी, जो एक साल से बीमार था, चिन्ता से घुल-घुल कर चल बसा। पछताने से क्या फायदा? चिड़ियाँ खेत चुग गई थीं। वजीर ने शोक में डूबी हुई फिरदौसी की लड़की से अशर्फियाँ लेने को कहा। लेकिन उसने इनकार कर दिया और बोली-"इस रुपए में कलङ्क लगा है ! मैं इसे नहीं ले सकती। मैं इसे हाथ भी लगाऊँगी भी तो पिता की रूह को चैन न होगा। जाओ ! इसे ले जाकर अपने सुल्तान को लौटा देना और कह देना कि इस खून सने रुपए से वही ऐशो-आराम करे!" इतना कह कर उसने मुँह फेर लिया। लाचार होकर वजीर सिक्क लेकर लौट आया।

गजनी ने यह खबर सुनी तो उस पर मानों बिजली गिरी। वह जाकर अपने बिस्तरे पर मुँह ढाँप कर पड़ रहा और चुपचाप आँसू बहाने लगा। ज्यों ज्यों उस अमर कवि की याद जाती, त्यों त्यों उसकी छाती दहल उठती।

आखिर मुहम्मद गजनी ने दूस शहर में फिरदौसी की याद में एक सराय बनवा दी। आज भी उस सराय का खण्डहर दिखाई देता है। उसे देख कर सब लोग कवि की याद करते और आँसू बहाते हैं।





मद्रास के त्यागराज नगर मुहले में सात और आठ नम्बर के दो अगल-बगल के घर हैं। इन में से एक में कामेश्वरी देवी रहती थी और दूसरे में सोमेश्वरी देवी। इन दोनों देवियों में हर बात में होड़ लगी रहती थी।

दोनों ही अपनी अपनी लड़कियों के जन्म दिन मनाती थीं। एक अगर कागज के थैलों में मिठाई रख कर बाँट देती तो दूसरी अड़ोस-पड़ोस की सब औरतों को बुला कर धूम-धाम से खुशियाँ मनाती और मिठाई भरे कागज़ के थैले, कपड़ों के थैलों में रख कर बाँटती।

एक जब सौ रुपए की रेशमी साड़ी पहन लेती तो दूसरी यह देख कर झट एक सौ पचास की साड़ी पहन लेती। इस तरह दोनों अपना अपना बड़प्पन दिखा कर आस पास के रहने वालों पर रोब जमाना चाहतीं।

सात और आठ नम्बर के घर नए बनाए गए थे। आठवें नम्बर में बिजली लग गई थी। लेकिन सातवें नम्बर में अभी नहीं लगी थी। यही कामेश्वरी देवी का घर था।

बेचारी देवी को इस का बड़ा अफसोस रहता था। आठवें नम्बर में बिजली हो और सातवें में न हो। कितनी शरम की बात थी।

ऐसे समय कामेश्वरी देवी के सिर पर और एक आफत टूट पड़ा ! बात यह थी कि सोमेश्वरी देवी ने एक रेडियो ले लिया। बस, अब इस चिन्ता से घुल कर कामेश्वरी देवी दिन दिन दुबली होने लगीं। उनकी यह हालत देख कर पति ने झट एक गैस लाइट और एक ग्रामोफोन खरीद दिए। तब कहीं कामेश्वरी देवी के मन में जरा चैन हुआ। अब वे हर रोज शाम के चार बजे अन्धेरा होने के दो घण्टे पहले ही गैस-लाइट जलाने लगी। ज्यों ही आठवें घर में रेडियो गाने लगता त्यों ही, वे चाहे कितने ही जरूरी काम में

माधब शर्मा



क्यों न लगी हुई हों, उठ कर फोन पर रिकार्ड चढ़ा देतीं। अड़ोस-पड़ोस की औरतें सोमेश्वरी देवीकी इज्जत करती थी। यह कामेश्वरी देवी को बहुत खटकता था।

इतने में दशहरे के पर्व-दिन आए। उस गली में जितनी औरतें थीं सब ने एक जगह जमा होकर एक निश्चय किया। उन सब ने कहा-"हम सभी अपने अपने घर उत्सव मनाती हैं। इस से किसी के घर अच्छी धूम-धाम नहीं हो पाती। अच्छा हो, यदि इस बार सभी मिल कर ललिता देवी के घर उत्सव मनाएँ। इस से खूब धूम-धाम होगी और बड़ी चहल-पहल रहेगी। हम सब तो उस में भाग लेंगी ही।" उन सब का यह प्रस्ताव सोमेश्वरी देवी को अच्छा लगा। उन्होंने कहा-"यह अच्छा होगा !" तुरन्त कामेश्वरी देवी ने हाँ में हाँ मिला दी-"मैं भी यही कहना चाहती थी !"

"तब तो सब कुछ ठीक हो गया ! हाँ, सोमेश्वरी देवी जी ! हमें आप से कुछ मदद चाहिए।" ललिता देवी ने कहा। तुरन्त कामेश्वरी देवी के कान खड़े हो गए। "और तो कुछ नहीं ! आप का रेडियो चाहिए हमें इस मौके पर।" ललिता देवी ने कहा।

तुरन्त कामेश्वरी मन ही मन धुलने लगी कि रेडियो देने की वजह से सब लोग सोमेश्वरी की बड़ाई करने लगेंगे और उन्हें कोई पूछेगा भी नहीं। वे सिर धुनने लगी कि सुनहरा मौका हाथ से निकल गया !

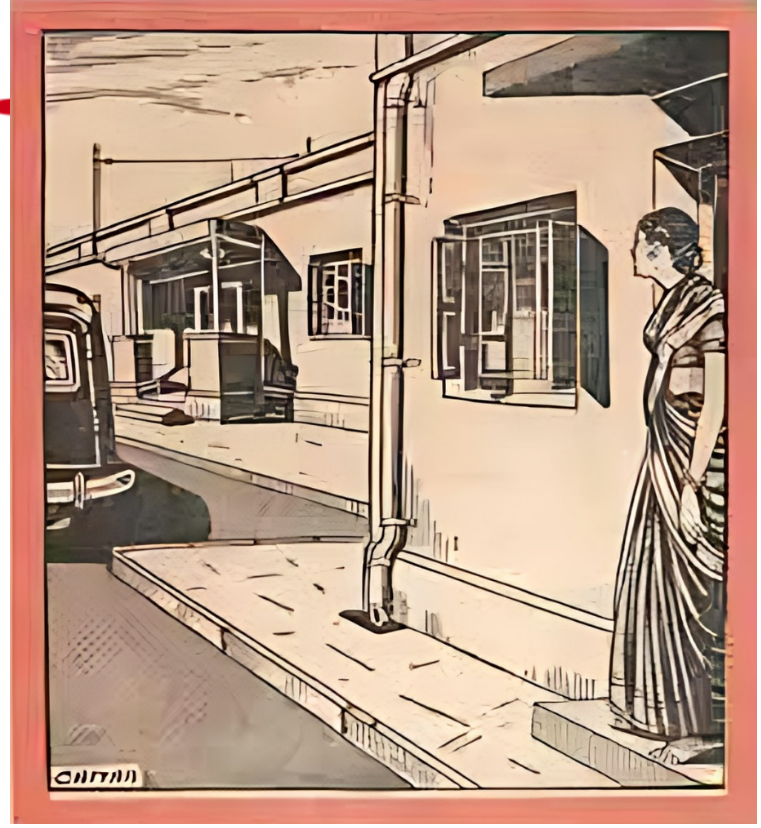
इतने में सोमेश्वरी ने कहा-"हमारा रेडियो तो बिगड़ गया है। बार बार कहती हूँ कि इसे ठीक करा लाइए। लेकिन वे सुनते ही नहीं, क्या करूँ ?"

इतना सुन कर कामेश्वरी देवी फूली न समाई। सोमेश्वरी देवी के जाते ही ललिता देवी से बोला-"देखा, कैसे साफ झूठ बोल गई। कह दिया, रेडियो बिगड़ गया।

फिर आज सवेरे किस तरह गा रहा था ?" यों झूठी निन्दा करके कहने लगी-"अजी, रेडियो न दिया तो बिगड़ा क्या है ? ले लो हमारा ग्रामोफोन ! जो रिकार्ड चाहो बज लो! परसों भिजवा दूँगी नौकरानी के हाथ।" ललिता देवी धन्यवाद देकर चली गई।

उसी रात संयोगवश कामेश्वरी देवी के ग्रामोफोन का स्प्रिंग टूट गया। बेचारी घबड़ाई और कहने लगी-"हाय ! अब में क्या करूँ ? ललिता देवी से वादा किया था कि परसों जरूर भिजवा दूँगी !" वे पति को दिक करने लगी कि "जाइए! तुरन्त इसे ठीक करा लाइए !" लेकिन पतिदेव बोले-"अभी जल्दी क्या है ! देखा जाएगा !" अब बेचारी कामेश्वरी देवी बहुत बेचैन हो गई। उस रात उन्हें अच्छी तरह नींद भी नहीं आई।

दूसरे दिन जब मरदों के दफ्तर जाने का समय हो गया तो सोमेश्वरी जी घर में ताला लगा कर कहीं चल दीं। कामेश्वरी ने यह देख कर सोचा-"भला यह कहाँ जा रही है ?" थोड़ी देर बाद एक मोटर आकर सोमेश्वरी देवी के घर के सामने रुकी।



कामेश्वरी देवी ने गाड़ी की आवाज सुन कर बाहर आकर देखा तो दोपहर हो गई थी। कड़ी धूप थी। सारी गली सूनी पड़ी थी। इतने में सोमेश्वरी देवी के घर से दो-तीन आदमी एक रेडियो ढोते बाहर निकले। उन्होंने रेडियो उस मोटर में रख दिया।

कामेश्वरी देवी ने यह सब देख कर सोचा-"तो बात यह है ! वह इन्हें भेज कर छुप-छुपे रेडियो ठीक कराना चाहती है। बेचारी डर गई कि ग्रामोफोन देने से मेरी साख बढ़ जाएगी ! नहीं तो इतनी जल्दी रेडियो ठीक कराने की क्या जरूरत थी?" तुरन्त वे मोटर के नजदीक गई। जो आदमी मोटर में आए थे, वे इनको

देख कर भौंचक्के रह गए। कामेश्वरी देवी ने कहा-"तुम लोगों का भेद खुल गया ! मुझसे बात छिपाने की कोई जरूरत नहीं। सोमेश्वरी ने तुम लोगों से छुपे छुपे रोडियो ठीक कर लाने को कहा है न ?"

थोड़ी देर तक उन लोगों के मुँह से बात न निकली। आखिर एक ने कहा-"जी! यही बात है ! उन्होंने कहा-'यह भेद किसी को मालूम न हो। शाम तक रेडियो ठीक कर ला दो!"

तुरन्त कामेश्वरी के मन में एक विचार दौड़ गया। उन्होंने पूछा-"तो तुम लोग रेडिया ही ठीक करते हो या ग्रामोफोन भी !"

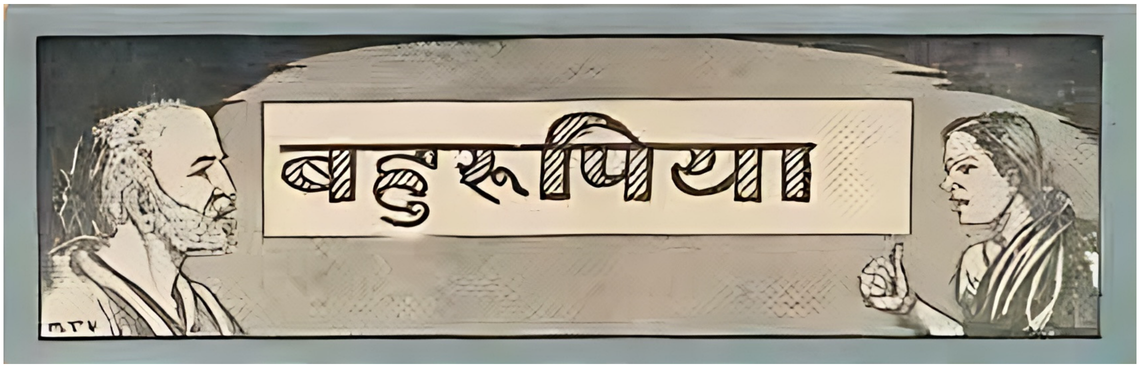
"जी ! ग्रामोफोन भी।" उस व्यक्ति ने कहा। "तो सुनो ! हमारा ग्रामोफोन बिगड़ गया है। उसे ठीक कर ला दो! रेडियो की मरम्मत तो धीरे धीरे होती रहेगी। मगर हाँ, ग्रामोफोन शाम तक ठीक हो जाना चाहिए! जो माँगोगे, सो दूँगी।" कामेश्वरी बोली।

तब वे लोग सोमेश्वरी जी के रेडियो के साथ साथ, कामेश्वरी जी का ग्रामोफोन भी लेकर जल्दी जल्दी चले गए।

शाम को जब सोमेश्वरी जी ने लौट कर घर का ताला खोला तो उन्हें रेडियो न दिखाई दिया। बस, दौड़ी-दौड़ी आई और कामेश्वरी जी से बोली-"जी ! कोई हमारा रेडिओ उठा ले गया। मालूम होता है किसी चाभी से ताला खोला लिया है। खैर, और कोई चीज छुई तक नहीं। हाय! अब पति देव से क्या कहूँ ?" यों वे रोने-धोने लगी।

कामेश्वरी चुप रह गई। आखिर बोली-"चोर थे वे लोग ? शायद इसीलिए मुझे देख कर घबरा गए थे पहले! मेरी बेवकूफी देखिए! देखा-देखी आमोफोन भी हाथों-हाथ देकर विदा कर दिया मैंने। इसी से कहते हैं-बिना जाने बूझे कोई काम नहीं करना चाहिए।" वे पछताने लगीं।





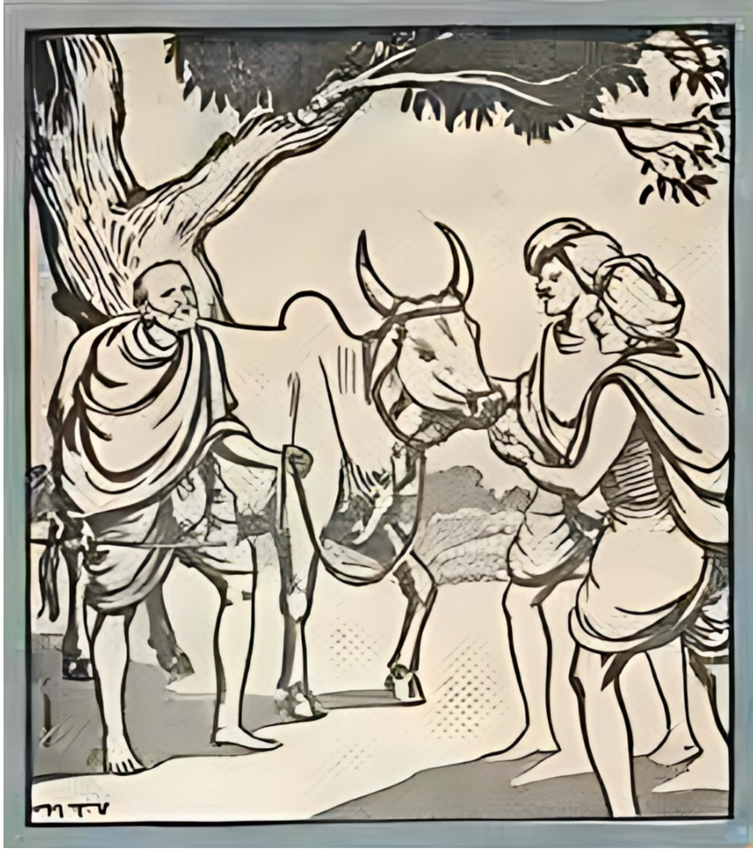
किसी समय बेनीपूर में बिसनराम नाम का एक बहुरूपिया रहता था। बिसनराम बहुत भोला-भाला आदमी था। उसके पिता और दादा रूप बदलने में बहुत चतुर थे। उन्होंने राजा को अपना कौशल दिखा कर बहुत सा धन ईनाम में पाया। लेकिन बिसनराम न रूप बदलना ही अच्छी तरह जानता था और न उतना चतुर ही था। फिर भी उसका लड़का किसनराम बड़ा होशियार निकला। सयाना होने पर वहीं कमा लाने लगा और बिसनराम घर बैठे बैठे खाने लगा।

आखिर एक दिन उसकी पत्नी उससे बोली-"अजी ! तुम हमेशा घर में क्यों बैठे रहते हो ? क्यों नहीं राजा के पास जाते और कुछ माँग लाते ? जाओ, राजा के पास जाकर हाथ जोड़ कर कहना-'हुजूर ! घर में बाल-बच्चे दूध की एक एक बूँद को तरस रहे हैं। गुलाम को एक गाय दिला दें तो बड़ी कृपा हो !'" पत्नी बोली। बिसनराम उठ कर तुरन्त राजा के यहाँ चला। उसने जाकर वही बात कह दी, जो उसकी पत्नी ने सिखाई थी। राजा ने कहा- "अच्छा जी ! हमारी गोशाला में जाकर जो गाय तुम्हें पसन्द आए, ले जाओ।"

बिसनराम ने तुरन्त जाकर एक अच्छी सी गाय चुन ली और हाँक कर घर ले चला। घर के नजदीक जाते ही पत्नी खुशी खुशी बाहर आई। लेकिन तुरन्त सर धुन कर कहने लगी-"अजी ! यह क्या किया ? मैंने कहा, गाय ले आओ ! तुम ले आए बैल। अब क्या करोगे इसे यहाँ रख कर ?"

"अच्छा, ऐसी बात ! क्या करूँ, बड़ी मूर्खता हो गई ! तुम्हीं बताओ, अब इसे ले जाकर मैं कहाँ छोड़ आऊँ ?" भोले बिसनराम ने पूछा। "इसे तुरन्त ले जाकर

शङ्कर प्रसाद



किसी को बेच दो और रुपया ले आओ !" पत्नी झल्ला कर बोली। बिसनराम उस बैल को बेचने के लिए हाट की ओर चला।

रास्ते में उसे दो ठग दिखाई पड़े। उन्होंने बिसनराम को देखते ही जान लिया कि बड़ा भोला आदमी है।

"इसे बेचने के लिए हाट तक जाने की क्या जरूरत है? हमीं खरीद लेंगे इसे। क्या लोगे, बोलो!" एक ठग ने पूछा। बिसनराम ने सच सच बता दिया-"मैं नहीं जानता।" "तो चलो मेरे बाबूजी के यहाँ ! बहुत तजुर्बा रखते हैं वे इन सब बातों में।" उस ठग ने कहा। तुरन्त बिसनराम उसके साथ चल दिया। दूसरा ठग उसके पीछे पीछे बैल को हाँक ले चला। तीनों ठगों के घर जा पहुँचे।

उस बैल की कीमत कम से कम दो सौ रुपये होती। लेकिन ठग के पिता ने कहा-"चार रुपए से ज्यादा नहीं।" तुरन्त पहले ठग ने चार रुपए बिसनराम को गिन दिए। जब बिसनराम रुपए टेंट में रख कर चलने लगा तो पहले ठग ने रोक कर कहा-"ठहरो भैया! मैंने तुम्हारा मामला यहीं फिसला कर दिया जिस से हाट में जाने की जरूरत नहीं पड़ी। कुछ बख्शीस दोगे कि नहीं मुझे ?"

तब बिसनराम ने उसे एक रुपया दिया और चलने लगा। तब दूसरे ठग ने उसे रोक कर कहा-"वाह ! भैया ! तुम्हारा बैल में यहाँ तक हॉक ले आया। मुझे कुछ नहीं दोगे !" तब बिसनराम ने उसे भी एक रुपया दिया और चलने लगा। तब ठग के पिता ने उसे रोक कर कहा-"मैंने दिमाग लड़ा कर तुम्हारे बैल की कीमत बताई, यह क्या मुफ्त में ? मुझे कुछ नहीं दोगे ?" तब बिसनराम ने बाकी दोनों रुपए उसके हाथ में रख दिए और खाली हाथ घर लौट आया।

जब उसकी पत्नी ने उतावली के साथ आकर पूछा कि रुपया कहाँ है, तो उसने सारी कहानी सुनाई। वह बेचारी रोने-धोने लगी और कहने लगी कि "कैसे बेवकूफ आदमी हो, ऐसे काम कैसे चलेगा ?"

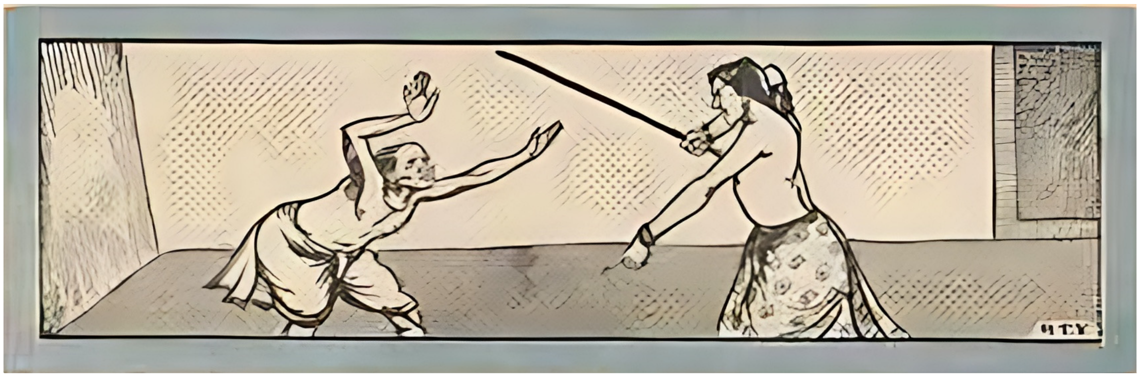


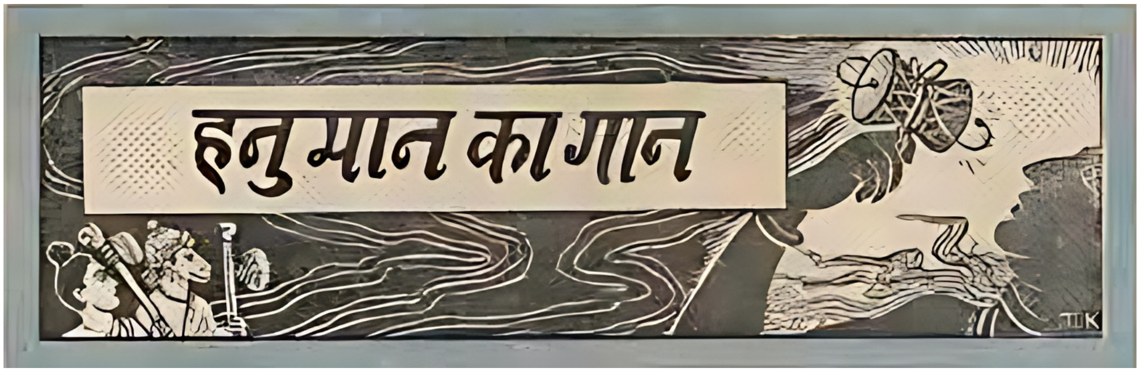
इतने में बेटा किसनराम घर लौटा। उसने पूछा-"बात क्या हुई ?" सारा हाल जानने के बाद वह पिता को लेकर गया और ठगों का पता जान कर लौट आया। किसनराम बहुरूपिया तो था ही। उसने एक युवती का रूप बना लिया और चोरों की राह में बैठ कर रोने-धोने लगा। गला भी उसने ठीक औरत का सा बना लिया। उसकी चाल चल गई। थोड़ी देर बाद एक ठग उस राह से आया। "क्यों जी ! क्यों रो रही हो ?" ठग ने उस नकली औरत को देख कर पूछा। "हाय हाय ! भगवान! यह तुमने क्या किया ! पति देव को बाघ उठा ले गया ! अब मेरा कौन सहारा है ?" किसनराम औरत की आवाज में रो धोकर कहने लगा। तब ठग ने उसे धीरज बँधा कर कहा-"रोने-धोने से अब क्या फायदा ! मैं तुमसे व्याह कर लूँगा। तुम्हें किसी तरह की तकलीफ न होने दूँगा। चलो मेरे साथ।" किसनराम घूँघट और भी जरा खींच कर, खाँस खखार कर उसके पीछे पीछे चला। थोड़ी दूर जाने पर दूसरा ठग भी सामने से आया। "यह औरत कौन है।" उसने पूछा। पहले ठग ने सारा हाल कह सुनाया और सगर्व बोला-"यह मेरी होने वाली बीवी है ! तब दूसरे ने कहा-"ठहर भाई ! जल्दी न कर! मैं तुमसे उमर में बड़ा हूँ। पहले मेरा ब्याह तो होने दो।" इतना कह कर वह झगड़ने लगा कि "मैं ही इस औरत से ब्याह कर लूँगा।" किसी तरह झगड़ते-झगड़ते दोनों औरत के रूप में किसनलाल को लेकर घर पहुँचे।

सारा हाल पिता से कह सुनाया। उनकी बातें सुन कर बूढ़ा बोला-"लड़की! तुम्हारी माँ के मरने के बाद मेरी बड़ी इच्छा थी कि दूसरा व्याह कर लूँ। लेकिन कई कारण से आज तक नहीं कर सका। इसलिए इस औरत से मुझे व्याह करने दो ! जाओ ! सभी इन्तजाम करो !" उसने कहा। इतने में किसनलाल जोर से "हाय ! हाय ! मैं तो भूल ही गई।" कहने लगा। तब दोनों ठगों ने पूछा कि बात क्या है? किसनलाल बोला-"जब मेरे पति को बाघ उठा ले गया तो चोरों के डर से मैंने अपने गहनों की पोटली एक झाड़ी में छिपा दी। आते वक्त उसे उठा लाना भूल ही गई ! अब क्या करूँ ? कोई उठा ले गया तो ?" उसकी बात सुन कर दोनों ठग तुरन्त गहनों की पोटली ढूँढ लाने गए। किसनलाल ने उन्हें झूठ-मूठ की कुछ निशानियाँ बता दीं।

उनके चले जाने के बाद किसनलाल ने अपना घूँघट हटा दिया। मरद का मुँह देख कर बूढ़ा भौंचक्का रह गया। "तो तु औरत नहीं है ?" वह कहने लगा। किसनलाल ने कोने में पड़ी हुई एक लाठी उठा ली और कहने लगा-"बूढ़े ! मैं दुल्हिन नहीं पुरोहित हूँ। दुल्हिन तो यह लाठी है। आओ! ब्याह का मजा तो चख लो !" यह कह कर उसने लाठी से बूढ़े को ठोंक-पीट कर दुरुस्त किया। बूढ़ा चिल्लाने लगा-"भैया! मुझे मारो नहीं! हाय ! पैरों पड़ता हूँ ! मारो नहीं।"

"भोले-भाले लोगों को ठग-ठग कर तूने जो रुपया कमाया, वह सब कहाँ छिपा रखा है ? बता अभी ! नहीं तो !" किसनलाल ने फिर लाठी उठाई। बूढ़े ने काँपते हुए तुरन्त रुपयों की गठरी लाकर किसनलाल को दे दी। किसनलाल वह गठरी लेकर उसके बेटों के लौट आने के पहले ही चम्पत हो गया।





महादेवजी के डमरू-निनाद से सङ्गीत का जन्म हुआ। भगवान शिवजी ने सङ्कल्प किया कि इस सङ्गीत का प्रचार सारे संसार में हो। साहित्य की देवी सरखती तो थीं ही। भगवान ने सोचा कि इसी तरह सङ्गीत के लिए भी विशेष देवता नियुक्त हों। यह सोच कर उन्होंने नारद और तुम्बुर को बुला कर दोनों को सङ्गीत सिखलाया। उन्होंने सोचा कि तुम्बुर स्वर्ग में सङ्गीत का प्रचार करेंगे तो नारद पृथ्वी पर सञ्चार करके उसे फैलाएँगे।

इसी निश्चय के अनुसार सङ्गीत सीख लेने के बाद तुम्बुर वर्ग में ही रह गए और नारद पृथ्वी पर उतर कर घूम-फिर कर उसका प्रचार करने लगे।

कुछ दिन बाद इन दोनों में होड़ हो गई कि कौन बड़ा गवैया है। इस बात का निर्णय कराने के लिए वे साहित्य की देवी सरस्वती के पास गए। दोनों ने अपनी अपनी निपुणता दिखाई। दोनों का गाना सुन कर सरखती असमञ्जस में पड़ गई और बोली-"भैया! तुम दोनों ही बड़े गवैये हो। लेकिन इससे किसी को सन्तोष न हुआ। इसलिए दोनों शिवजी के पास गए। बेचारे महादेव भी कुछ निर्णय न कर सके। हाँ, उन्होंने भी दोनों की प्रशंसा की।

असन्तुष्ट होकर दोनों पार्वती के पास गए। गाना सुन लेने के बाद पार्वतीजी ने भी दोनों को सराहा। लेकिन जब इससे किसी को सन्तोष न हुआ तो वे बोली-"सङ्गीत के पण्डित हैं हनुमानजी। आजकल वे बिन्ध्याचल पर रहते हैं। तुम दोनों उनके यहाँ जाकर अपना अपना कौशल दिखाओ ! वे जरूर निश्चय कर देंगे कि तुम दोनों में कौन बड़ा गवैया है।

बस, तुम्बुर और नारद दौड़े दौड़े बिन्ध्याचल पर गए और बेचारे हनुमानजी

कुमारी रमा

को ध्यान से जगाया। "हनुमानजी ! हमने सुना है कि आप सङ्गीत के बड़े पण्डित है ! हम दोनों अभी आपको अपना अपना गाना सुनाएँगे। फिर आपको निर्णय करना पड़ेगा कि दोनों में कौन बड़ा गवैया है।" उन्होंने हनुमान से बिनती की।

तब हनुमान ने मुसकुरा कर जवाब दिया-"वाह! इतनी सी बात के लिए स्वर्ग से दौड़े आए हो? अच्छा। लाओ इधर अपनी अपनी वीणा !" तुरन्त तुम्बुर ने अपनी 'कलावती' नाम की बीणा और नारद ने अपनी 'महती' नाम की बीणा हनुमान को दी। दोनों अब आँख फाड़ फाड़ कर देखने लगे कि जाने, हनुमानजी कौन सा चमत्कार करने जा रहे हैं। लेकिन हनुमानजी ने और कुछ नहीं किया। सिर्फ दोनों बीणाएँ दोनों हाथों में लेकर बजाने और गाने लगे।

ज्यों ही हनुमान ने गाना शुरू किया त्यों ही विंध्याचल की शिलाएँ पिघल कर पानी की तरह वह चलीं। थोड़ी देर में वहाँ एक नाला बह चला। हनुमान ने अचानक दोनों बीणाएँ उठा कर उस नाले में फेंक दी। यह देख कर तुम्बुर और नारद चीख पड़े। हनुमान का गान बन्द हो गया। फौरन नाले में बहने वाला पत्थर का पानी जम गया और फिर से पत्थर बन गया।

देव-गायकों की दोनों बीणाएँ उस पत्थर की कारा में बन्द हो गई। तब हनुमान ने कहा-"तुम दोनों सच्चे गवैए हो तो गा कर उस पत्थर को पिघला लो और अपनी अपनी बीणा ले लो।"

तुम्बुर और नारद, दोनों ने यत्न किया। लेकिन यह उनसे न हो सका। तब हनुमान ने फिर से गा कर उस पत्थर को पिघलाया और बीणाएँ निकाल कर दोनों को दे दी। फिर बोले-"तुम दोनों ही बड़े गबैए हो। विद्या का घमण्ड नहीं करना चाहिए।" तुम्बुर और नारद शरमा कर चल दिए।





रङ्गीन चित्र-कथा, चित्र — १